RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-07
July-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

# वर्तमान शिक्षा एवं शिक्षण संस्थानों के प्रति श्रीलाल शुक्ल की सम्यक चेतना

डा0 अनुपम कुमार

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 15 July 2019

**Keywords**
*शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण संस्थान, रिसर्च, इतिहास, अध्यापन और अध्यापक, निजी संस्थान।*

***Corresponding Author**
*Email: kumaranupam1307[at]gmail.com*

**ABSTRACT**

*किसी भी राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में वहाँ की राष्ट्रीय चेतना की आत्मा का वास होता है। शिक्षा, जो मनुष्य को संस्कार देती है, वर्तमान समय में काफी महंगी हो चली है। अच्छे शिक्षण संस्थानों में भावी नेतृत्व विकसित होता है, लेकिन स्वातंत्रयोत्तर भारत में इन संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करना आम लोगों के लिए संभव नहीं रह गया है। स्वातंत्रयोत्तर भारत में शिक्षा के स्तर पर ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश का भेद रहा है। परिवेश के साथ–साथ हमारी शिक्षा पद्धति भी भेद उत्पन्न कर देती है, क्योंकि उसका न तो आज–तक कोई सुनिश्चित मानदंड बन सका है और न उसमें प्रयोग के स्तर पर किए गए परिवर्तन क्रांतिकारी सिद्ध हो सके हैं। प्रयोग और त्रुटिपूर्ण सुझावों की भीड़ में अपनी शिक्षा पद्धति को धिक्कारते हुए शुक्ल ने कहा है कि ''वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।''[1] यह बात सत्य है कि पिष्टपेषण और पुनरावृत्ति से शिक्षा प्रणाली, अनुपयुक्त और नकारा होती जा रही है। इसके पीछे मूल कारण गुटबाजी, राजनीति और छल–प्रपंच है। ये शिक्षा की सफलता की राह के अवरोधक बने हुए हैं। जीवन को अपेक्षित स्तर की ओर उन्मुख करने में असमर्थ यह शिक्षा प्रणाली वर्तमान शिक्षित युवावर्ग में पलायनवादी मनोवृत्ति को जन्म देती है। जिसे शुक्ल ने अपनी रचनाओं में जगह–जगह लक्षित किया है।*

## प्रस्तावना

शुक्ल ने माध्यमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी शिक्षा के स्तर की कमियों को यथार्थपरक स्तर पर उभारा है। 'राग दरबारी' में 'रंगनाथ' कहता है कि ''इस देश की शिक्षा पद्धति बिल्कुल बेकार है। बड़े–बड़े नेता यही कहते हैं। .फिर तुम इस कॉलेज का हाल नहीं जानते। लुच्चों और शोहदों का अड्डा है। मास्टर पढ़ाना लिखाना छोड़कर सिर्फ पालिटिक्स भिड़ाते हैं। .यहाँ भला कोई इम्तहान में पास हो सकता हैं.? कुछ बेशर्म लड़के भी हैं, जो कभी–कभी इम्तहान पास कर लेते हैं, पर उससे ....।''[2] इस विद्यालय स्तर की शिक्षा का यही हाल है जहाँ पास होना ही बड़ा मकसद है। अच्छी शिक्षा ग्रहण करने की ललक बिल्कुल खत्म होती जा रही है। इस पास होने की तरकीब में नकल के साथ 'जुगाड़' व्यवस्था महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। जिसे शुक्ल ने कई यथार्थ चित्रों के माध्यम से 'जीती–जागती सरकार का एक हसीन सपना' निबंध में प्रस्तुत किया है। हाई स्कूल या इंटरमीडिएट के किसी परीक्षा केंद्र पर चलिए। ... पर यह नजारा देखने के पहले नकलची संप्रदाय की बोली के लिए तीन शब्द जान लेना काफी होगा। 1 वार्ड या 'कंडीडेट' अर्थात् वह लड़का या लड़की जिसे परीक्षा–केंद्र में ड्यूटी पर तैनात कोई होमगार्ड, सिपाही, दारोगा, अध्यापक, नेता या गुंडा खास दिलचस्पी दिखाकर केंद्र–व्यवस्थापक या कक्ष नियंत्रक की मदद से नकल कराके पास कराना चाहते हों। 2 'मैटर' अर्थात् कोई किताब, उसका फटा हुआ पन्ना, कोई कागज या कोई और सामग्री जिससे प्रश्नपत्र के उत्तर नकल करके उतारे जा सकते हों और ;3 चर्म–कर्म : यह अश्लील शब्द दारोगा, सिपाही, कक्ष–नियंत्रक आदि की उस लालसा को प्रकट करता है जिसके जोर से वे किसी परीक्षार्थी लड़की या लड़के के शारीरिक आकर्षण के कारण उसे पास कराने के लिए सारी शर्मो–हया छोड़कर खुलेआम मैदान में उतर पड़ते हैं। परीक्षा–केंद्र पर बंटने वाला पर्चा – अगर सात बजे परीक्षा शुरू होती है – साढ़े छः बजे खुल गया है। उसकी एक प्रति तत्काल लगभग दो सौ मीटर दूर एक इमारत में पहुँच चुकी है, जहाँ एक या दो विद्वान जल्दी–जल्दी उसका हल तैयार करने को तैयार बैठे हैं। वे एक घंटे में काम को पूरा करके जवाबों के कागज चौपर्त लेते हैं। यही 'मेटर' है। वहाँ पहले से ही दर्जनों लोग अपने वार्ड के लिए 'मेटर' लेने को खड़े हुए हैं। रबड़ बैंड ने यह काम आसान कर दिया है। मेटर को रबड़ बैंड से बांधकर आप चाहें तो उस पर 'वार्ड' का नाम भी लिखा सकते हैं, वैसे उस पर इतनाा काफी है, कमरा नं. 7 सीट नं. 19 । मेटर के बदले में विद्वान को जो दिया जायेगा, वह घूस या फीस नहीं है, वह सुविधा–शुल्क है।

## विश्वविद्यालयी शिक्षा में रिसर्च एवं राजनीतिक हस्तक्षेप का स्वरुप

विश्वविद्यालयी शिक्षा में रिसर्च की महत्ता है। विडंबना यह है कि शिक्षा रोजगार का साधन है तो रिसर्च भी मात्र रोजगार पाने का रास्ता। कोई भी रिसर्च बस खानापूर्ति भर है। इसलिए शुक्ल ने 'रिसर्च' को राग दरबारी में 'घास–खोदना' कहा है। घास खोद रहा हूँ। इसी को अंग्रेजी में रिसर्च कहते हैं।''[3] इस विश्वविद्यालय रिसर्च की नियति यह है कि अध्यापक ही कभी–कभी रिसर्चर की थेसिस लिख डालते हैं। उसके एवज में उन्हें अफरात पैसे मिल जाते हैं, और रिसर्चर को डिग्री। जिसे शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त

RRIJM 2015, All Rights Reserved

किया है कि यदि आप उत्तर–प्रदेश के किसी विश्वविद्यालय में शोधार्थी के रूप में पंजीकृत होते हैं तो आपको कोई प्रोफेसर या वरिष्ठ अध्यापक अपने आप गाइड के रूप में मिल जायेगा। रुपये की जरूरत आपको वहीं पड़ेगी जहाँ अपना शोध–प्रबंध आप खुद न लिखकर किसी पेशेवर प्रबंध लेखक से लिखाना चाहेंगे।''[4] अगर इस ढंग से रिसर्च होता रहेगा तो विश्वविद्यालयी शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता ही रहेगा।

वर्तमान समय में शिक्षा का मुद्दा सारे राजनीतिज्ञों को एक हथियार के रूप में मिल गया है। कोई भी नेता, चाहे वह खुद अशिक्षित हो, 'शिक्षा' के मुद्दे पर भाषण देने से पीछे नहीं हटता है। 'राग दरबारी' में छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज के आकस्मिक निरीक्षण में आये महानुभाव का वर्णन करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है कि मास्टर और लड़के अपने बारे में कुछ सोच भी न पाये थे कि वे उस विषय पर उतर आये, जिस पर प्रत्येक व्याख्यानदाता शिक्षा–संस्थानों में जरूर बोलता है। उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा पद्धति खराब है और इस शिक्षा को पाकर लोग क्लर्क ही बनना चाहते हैं। उन्होंने लड़कों को सुझाव दिया कि इस शिक्षा–पद्धति में आमूल परिवर्तन की जरूरत है। .... उन्होंने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में पिछली शताब्दी की यह एक असाधारण उपलब्धि है कि हम इतनी जल्दी जान गए कि हमारी शिक्षा पद्धति खराब है।''[5] यह बात तो सत्य है कि शिक्षा पद्धति खराब है लेकिन शिक्षा के लिए स्कूलों में उपलब्ध पाठ्यपुस्तकों का इसमें क्या दोष है? वर्तमान में सरकार बदलती है, स्कूल में पाठ्यपुस्तक बदल जाते हैं। इस बदलाव से विद्यार्थी तो परेशान होते ही हैं, साथ ही शिक्षा के लिए उपलब्ध पाठ्यपुस्तक राजनीतिक विचारधारा की शिकार हो जाती है। जबकि शिक्षा हमेशा उत्तम को ग्रहण करना सिखाती है, राजनीतिक दांव–पेंच में फंसे पाठ्यपुस्तक एवं पाठ्यक्रम को ग्रहण करने के लिए नहीं। इस संवेदना को श्रीलाल शुक्ल ने 'रास्ते की कुतिया' कह कर प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है : '' वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है जिसे कोई भी लात मार सकता है।''[6] लद्धर लोग भी देख सकते हैं कि यह व्यंग्य है। पर इसे लगभग शब्दशः चरितार्थ किया है स्वातंत्रयोत्तर सत्ता से लेकर वर्तमान सत्ता पक्ष ने।

## श्रीलाल शुक्ल के तीखे सवाल

ढाई–ढ़ाई साल के बच्चे–बड़े आदमियों के बच्चे भी – भारी–भारी बस्ते लिए हुए और रोते हुए स्कूल क्यों जा रहे हैं? उन्हें एक साथ अंग्रेजी और अपनी क्षेत्रीय भाषा क्यों झेलनी पड़ती है? छोटे आदमियों के बच्चे स्कूल क्यों नहीं जाते? जाते भी हैं तो कुछ दिनों बाद ही गाय–भैंस–बकरी–सुअर चराने के लिए और खेतों की मेड़ पर घास छीलने के लिए घर पर क्यों रुक जाते हैं? संविधान, प्राइमरी शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था को राज्य पर डालता है, फिर भी आजादी के बाद की दो पीढ़ियाँ बर्बाद कर चुकने पर भी देश को दुनिया में सबसे अधिक निरक्षर क्यों बनाकर रखा गया है? प्राथमिक शिक्षा में सभी बच्चों को सीधे–सीधे समेटने के बजाय अधिकांश साधन उस प्रहसन में क्यों फेके जा रहे हैं जिसे 'अनौपचारिक शिक्षा' कहते हैं? वही अनौपचारिक शिक्षा जिसमें बेईमान शिक्षक पहले साक्षरों को निरक्षरों के रजिस्टर में दर्ज करते हैं, बाद में उन्हें साक्षर बनाकर पर्यवेक्षकों से अपने फर्जी काम की वाहवाही पाते हैं।

## इतिहास और शिक्षा का संबंध

मूलतः शिक्षा–पद्धति एक व्यवस्था है। उसमें खामियां हैं। हमारे इतिहास की पुस्तक कुछ साक्ष्यों के आधार पर लिखी गई हैं। उसकी व्याख्या अनेक ढंग से हो सकती है। उन साक्ष्यों में खामियां नहीं हो सकती हैं। लेकिन आजकल इतिहास के साक्ष्यों के साथ खिलवाड़ के साथ–साथ उसकी व्याख्या भी राजनीतिक रंग से रंगी होती है। सरकार बदलती है तो उसका खामियाजा इतिहास को भुगतना पड़ता है। इतिहास के साक्ष्यों पर विवाद शुरू हो जाता है। आजकल इतिहास के माध्यम से लगता है सरकार बच्चों को अपनी राजनीतिक विचारधारा पढ़ा रही है। जिसे श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है ''एक पार्टी द्वारा इतिहास के कूड़ेदान को भरने और दूसरी पार्टी द्वारा उसी कूड़ेदान को खाली करने का खेल एक लंबा खेल है। यह खेल–खेलने से कोई फायदा नहीं, क्योंकि .. . यह खेल, एक बार शुरू हो जाने के बाद कभी खत्म होने वाला नहीं – उस दिन के बाद भी जब कि कूड़ेदान भरने वाले और उन्हें खाली करने वाले खुद कूड़ेदान में फेंक दिये जायेंगे। जैसा भी हो, इतना तय है कि उन्हें वहाँ से निकालने के लिए कोई भी नया खेल नहीं शुरू करेगा।''[8] पुनः इतिहास में विचारधारा को थोपने के संबंध में शुक्ल का मानना है कि ''रही ¯हदुत्व की प्रगतिशीलता यानी जाति–प्रथा, दहेज–प्रथा, वधूदहन प्रथा, अशिक्षा, पारस्परिक द्वेष आदि। पर ये हमारे शानदार भूत में कहाँ थे? अगर आज दिखाई दे रहे हैं तो इससे हमारी प्रगतिशीलता पर धब्बा कैसे लग सकता है? इसके पीछे मुस्लिम और अंग्रेज संप्रदाय की साजिश है। है कि नहीं? इसे साबित करने के लिए इतिहास की थोड़ी–सी सही व्याख्या भर की जरूरत है। हम इतिहास की सही व्याख्या करते हुए ¯हदुत्व की कमर पकड़कर सदृढ़ता और आत्मनिर्भरता की चोटी पर चढ़ सकते हैं। कितना अच्छा हो कि इस दृष्टि से इतिहास की सही व्याख्या भी वही करें।''[9]

## अध्यापन और अध्यापकों की स्थिति

जैसी स्थिति विद्यालयों, शिक्षा प्रणाली एवं पाठ्यपुस्तकों की है, उससे बदतर स्थिति अध्यापन और अध्यापकों की है। अध्यापकों की रुचि अध्यापन और छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में उतनी नहीं है जितनी अपने अतिरिक्त व्यवसाय को चमकाने में। 'राग दरबारी' में बी॰एस॰सी॰ पास मास्टर मोतीराम छंगामल इंटर कॉलिज में विज्ञान के प्राध्यापक

हैं जो छात्रों को आपेक्षिक घनत्व के अध्याय के माध्यम से आटा–चक्की का इतिहास बताने में अधिक रुचि रखते हैं। छात्रों के प्रश्नों में उनकी रुचि उतनी नहीं है जितनी अपनी चक्की की 'भव्फ–भव्फ' आवाज सुनने में। अध्यापक वर्ग की यह विकृत मनोवृत्ति एक ओर तो छात्रों की जिज्ञासा की भावना को समाप्त कर देती है, वहीं दूसरी ओर उसके ज्ञान को परीक्षा तक ही सीमित कर देती है। 'गुटबाजी' शिक्षण संस्थान की गरिमा को विघटित कर देता है। इस विघटन का काला चिट्ठò 'राग दरबारी' में है। खन्ना मास्टर प्रतिदिन कॉलेज में ¯प्रसिपल के विरुद्ध षड्यंत्र रचने, गाली–गलौज करने तथा गुटबंदी करने में ही रत रहते हैं। वे सिर्फ पार्टी बंदी के उस्ताद हैं। अपने घर पर लड़कों को बुला–बुलाकर जुआ खिलाते हैं। वे इतिहास के मास्टर थे, और अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। जबकि मालवीय जैसे मास्टर इसलिए कुख्यात हैं कि वे किसी लड़के को अपने साथ शहर ले गए थे और उसे सिनेमा दिखाकर, उसके साथ रात बिताकर और उसे आगामी परीक्षा में आने वाला हिसाब का पर्चा बताकर शिवपालगंज वापस लौट आए थे।''[10] इस प्रकार शुक्ल ने एक ओर भ्रष्ट और स्वार्थपरायण मनोवृत्ति वाले अध्यापकों के चारित्रिक विघटन एवं कर्त्तव्यच्युति की गाथा को अपनी रचनाओं में उजागर किया है तो दूसरी तरफ स्थानीय निजी शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था पर भी प्रहार किया है।

## निजी शिक्षण संस्थान की स्थिति

''स्थानीय निजी शिक्षण संस्थान प्रायः किसी जननायक की प्रेरणा से शिक्षा–प्रचार के लिए तथा उसके चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते हैं। उनका मुख्य कार्य होता है µ मास्टरों और सरकारी अनुदान का शोषण करना। ये कॉलिज सिर्फ जमाने के फैशन के हिसाब से बिना आगा–पीछा सोचे हुए चलाए जा रहे थे और यह निश्चय था कि वहाँ पढ़ने वाले लड़के अपनी 'रिआया' वाली हैसियत छोड़कर कभी mQपर जाने की कोशिश न करेंगे और उँची नौकरियाँ और व्यवसाय जिनके हाथ में हैं उनके एकाधिकार को इन कॉलिजों की ओर से कोई खतरा पैदा नहीं होगा।''[11] अतः आजकल इन निजी कॉलेज की बाढ़ आई हुई मिलती है।

सरकारी काम–काज की गति मंथर होती है। शिक्षा–विभाग सरकारी–काम–काज में शिक्षित माना जाता है। लेकिन वहाँ भी स्थिति भयावह है। इस भयावह स्थिति की पीड़ा को ''है कोई शिक्षित – इस शिक्षा विभाग में?'' शीर्षक निबंध में शुक्ल ने रूपक के माध्यम से उद्घाटित किया है। वह है µ ''उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित इन्टरमीडिएट की परीक्षा में तरह–तरह की ¯हदी है और कौन छात्रा किस ¯हदी को ले सकता है, इसे समझाने के लिए एम॰ए॰ की न्यूनतम योग्यता जरूरी है। एक है ¯हदी साहित्य, कुछ उम्मीदवार एक दूसरी ¯हदी ले सकते हैं, उसका नाम है 'हाईस्कूल स्तर की ¯हदी' तीसरी है 'आरंभिक ¯हदी'। मेरे पड़ोसी मित्र के दो लड़कों ने – दिल्ली से हाईस्कूल करने के बाद –प्राइवेट उम्मीदवार इण्टरमीडिएट की परीक्षा दी और, विशेषज्ञों की सलाह पर दूसरे नम्बर की ¯हदी ली। उन्होंने जब अपना परीक्षाफल देखा तो एक ने अपने को ¯हदी परीक्षा में अनुपस्थित पाया, दूसरे ने फेल। फेलशुदा छात्र को दो पर्चे दूसरे नम्बर की ¯हदी के मिले थे, तीसरा पर्चा–गलती से– तीसरे नम्बर की ¯हदी का। उस पर काफी लिखा–पढ़ी पहले ही हो चुकी थी। इसके बाद रंगमंच पर पिता का प्रवेश। अपने लड़कों के लिए शिक्षा निदेशक को प्रतिवेदन देकर, माध्यमिक शिक्षा परिषद् के सचिव के नाम एक परिचयपत्र से लैस होकर वे इलाहाबाद पहुँचे। कहा जाता है कि यह परिषद् एक साथ लगभग बीस लाख छात्रों की परीक्षा लेने वाला संसार का सबसे बड़ा परीक्षा–तंत्र है। पिता वहाँ जाकर देखते हैं, कुछ नियमों के मारे हुए, कुछ कंप्यूटर के दुतकारे हुए छात्रों के पिता लोग उन्हीं के तरह गर्दिश में हैं। दफ्तर में वे जगह–जगह गुहार लगाने लगे कि एक ही सवाल है दाता, मेरे दो बेटों ने जैसी भी परीक्षा दी हो, उनके अंक देखकर उनका परीक्षापफल हमें दे दिया जाय। अंक–सूची के लिए उन्होंने फीस भी जमा कर दी।इस कमरे से उस कमरे में, इस मेज से उस मेज तक वे बार–बार चक्कर काट रहे हैं, किसी एक को वे जब पूरी बात समझा चुकते हैं तो वह सिर्फ इतना कहता है, आप सही कहते हैं पर इसे गलत जगह पर कह रहे हैं। यही बात अब, जाइए उधर जाकर उनसे कहिए। घुटन और बेपनाह खुलेपन के तीन दिन बीतने पर जब एक बाबु कहता है कि मार्कशीट के लिए दी गई फीस बैंक रसीद अभी अपफसर के ही मेज पर है, मेरी मेज पर नहीं आयी है और उसकी फोटो कॉपी का कोई मतलब नहीं, तब वे लगभग भहराकर गिरने की हालत में अफसर के कमरे में जबरन घुस जाते हैं जहाँ वह एक अंतहीन बैठक में बैठा है। वे एक खाली कुर्सी पर ढह जाते हैं और चिल्लाकर पूछते हैं कि इस शिक्षा–विभाग में क्या कोई शिक्षित आदमी भी है जो मुझे सिर्फ यह बता दें कि अंक–सूची पाने के लिए मुझे क्या करना है, कहाँ जाना है, किसके सामने पहुंचकर कौन–सी प्रक्रिया पूरी करनी है।''[12]

## शिक्षा में व्यावहारिक पक्ष का अभाव

शिक्षा–विभाग हो या शैक्षणिक संस्थान सभी जगह व्यावहारिक दूरदर्शिता का अभाव है। काम करने वाले की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि शिक्षित होकर भी वे लोग अशिक्षित हैं। कोई भी आज की शिक्षा पद्धति एवं शैक्षणिक संस्थान पर प्रश्न खड़ा कर देता है। यह इस बात का द्योतक है कि शिक्षण कार्यालय एवं शैक्षणिक संस्थान भी विरोधाभासी चरित्रों से बचे हुए नहीं हैं। वर्तमान शिक्षा केवल सिद्धांत बघारती है, वह व्यावहारिक ज्ञान से काफी दूर है। समय की माँग है कि

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

शिक्षा रोजगारोन्मुख हो, लेकिन विडंबना यह है कि सारा देश केवल कोरे ज्ञान पर आधारित शिक्षा की नियति से ग्रस्त है। भक्तिकाल में कबीर, तुलसी, सूर, जायसी आदि सभी ने कोरे ज्ञान का तिरस्कार किया और समय की जरूरत के हिसाब से कोरे ज्ञान के स्थान पर 'प्रेम' की प्रतिष्ठा की। आधुनिक समाज भी कोरे ज्ञान के बारुद पर बैठा है जो केवल बंजरता पैदा करती है। समय की माँग तकनीकी या बाजारीकरण के क्षेत्र में भी व्यावहारिक ज्ञान से भरे व्यक्तित्व की माँग करती है, जिसे सिद्धांत के साथ–साथ प्रयोग का तरीका भी आना चाहिए। श्रीलाल शुक्ल की पारखी संवेदना इस विडंबना को पकड़ती है। जिसे 'पहली चूक' कहानी में शुक्ल ने शिक्षित व्यक्ति द्वारा खेती न कर पाने के रूप में गढ़ा है। ''मेरे चाचा ने मुझे समझाया कि खेती का काम है तो बड़ा उत्तम, पर फारसी पढ़कर जिस प्रकार तेल नहीं बेचा जाता वैसे ही अंग्रेजी पढ़कर खेत नहीं जोता जा सकता। इस पर मैंने उन्हें बताया कि यह सब कुदरत का खेल है क्योंकि फारस में तेल बेचने वाले संस्कृत नहीं पढ़ते, फारसी ही पढ़ते होंगे और इंग्लैंड के किसान सिर्फ अंग्रेजी ही नहीं बोलते, खेत भी जोतते हैं। चचा बोले, बेटा, यह खेती का पेशा तुमसे नहीं चलेगा। यह तो हम जैसे जाहिलों के लिए है। इसमें तो दिन–रात पानी और पसीना, मिट्टी और गोबर से खेलना पड़ता है।'' इस पर मैंने जवाब दिया कि यह शरीर ही मिट्टी का बना हुआ है और गोबर तो परम पवित्र वस्तु है। मिट्टी का स्थान यदि प×चभूत में है तो गोबर का स्थान प×चगव्य में है। मेरे मुँह से पवित्रता की बात सुनते ही चचा दंग रह गये। आसपास बैठे हुए लोगों में 'धन्य है, धन्य है' का नारा लग गया। तब मैंने फिर कहना शुरू किया, और चचा, यह खेती जाहिलों का पेशा नहीं है। बड़ों–बड़ों ने इसकी प्रशंसा की है। कार्लाइल ने इस पर लेख लिखे हैं, टॉलस्टाय तो स्वयं किसान ही हो गया था, वाल्टेयर बागबानी करता था, ग्लैडस्टन लकड़ी चीरता था। अपने देश में भी गौतम जैसे ऋषि गेहूँ बोते थे। वैसे तो, कन्द–मूल खाने के कारण उनकी दिलचस्पी हॉर्टिकल्चर में थी और वे जयादातर फल और शकरकन्द ही पैदा करते थे। इसलिए खेती को उत्तम मानना ही चाहिए। मैं कल से खेती करूँगा। मेरा यही फैसला है।' मेरे चचा मेरी बात से प्रभावित तो हुए पर बोले, 'बेटा, खेती तो करोगे पर इतना समझ लो कि खेतों के आसपास न तो कॉफी हाउस होते हैं, न क्लब, सिनेमा–घरों की गद्देदार कुर्सियों की जगह अरहर ठूँठियों पर घुमना–फिरना होता है।''[13]

## निष्कर्ष

वस्तुतः सैद्धांतिक शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा में बहुत अंतर होता है। सैद्धांतिक शिक्षा केवल तर्क एवं पाठ्यपुस्तक के सहारे आगे बढ़ती है जबकि व्यावहारिक शिक्षा अनुभव एवं अभ्यास को प्रश्रय देती है। अनुभव कार्यकुशलता बढ़ाता है तो अभ्यास उस कार्य में पूर्णता लाता है। इसलिए आज सैद्धांतिक शिक्षा से अधिक व्यावहारिक शिक्षा अपेक्षित है। इस चेतना के पक्षधर श्रीलाल शुक्ल भी हैं।

## संदर्भ


1 श्रीलाल शुक्ल – '*राग दरबारी*', पृ॰–10
2 वही, पृ॰–29
3 वही, पृ॰–7
4 वही, पृ –47
5 वही, पृ –157
6 वही, पृ –10
7 श्रीलाल शुक्ल – '*आओ बैठ लें कुछ देर*', पृ॰–58–59
8 वही, पृ॰–59–60
9 वही, पृ॰–89–90
10 श्रीलाल शुक्ल – '*राग दरबारी*', पृ॰–241
11 वही, पृ॰–232–233
12 श्रीलाल शुक्ल – '*आओ बैठ लें कुछ देर*', पृ॰–111–113
13 श्रीलाल शुक्ल – '*अंगद का पाँव*', पृ॰–117–118


RRIJM 2015, All Rights Reserved 